



## दलित आत्मकथाएँ : जाति प्रथा की पीड़ा व भेदभाव का प्रत्यक्ष प्रमाण

रेनू सिंह (शोधार्थी)

हिन्दी विभाग

वनस्थली विद्यापीठ

राजस्थान, भारत

### शोध संक्षेप

आज हिन्दी में दलित साहित्य की अनुगूँज चारों ओर सुनाई दे रही है। दलित साहित्य विभिन्न विधाओं के माध्यम से अपने पाँव पसारने में समर्थ हैं। जिसमें दलित आत्मकथाओं का अपना महत्वपूर्ण स्थान है। दलित लेखकों की आत्मकथाएँ जीवन की सच्चाई को उसकी संपूर्ण विद्रूपता के साथ उकेरती हैं। इन आत्मकथाओं में अभिव्यक्त सच्चाई इतनी बड़ी होती है कि उसे झेल पाना न तो दलितों के लिए सहज है और न ही गैर दलितों के लिए। प्रस्तुत शोध पत्र में दलित आत्मकथाओं एन अभिव्यक्त जाति प्रथा की पीड़ा और भेदभाव पर विचार किया गया है।

### प्रस्तावना

आत्मकथा लिखना जोखिम का काम है। कोई झूठा, बेईमान व्यक्ति कभी भी आत्मकथा नहीं लिख सकता। आत्मकथा में जीवन की शुरुआत से अंत तक की सभी घटनाओं का चित्रण खुल्लम-खुल्ला होता है। इसलिए जयप्रकाश कदम ने आत्मकथा लिखने के विषय में लिखा है, "आत्मकथा लिखना निस्संदेह एक हिम्मत और जोखिम का काम है, बल्कि यूँ कहिए कि तलवार की धार पर नंगे पैर चलना है। यदि लेखक सच्चाई पर टिका रहेगा तो उसका लहु-लुहान होना लगभग निश्चित है। क्योंकि आत्मकथा नंगी सच्चाई की मांग करती है और इतना साहस बहुत कम लोगों में होता है जो सामाजिक यथार्थ के साथ-साथ अपने जीवन के नंगे यथार्थ का सार्वजनिक प्रदर्शन कर सके।"<sup>1</sup>

दलित साहित्य सर्वप्रथम मराठी भाषा में लिखा गया। इसके पश्चात् अन्य भाषाओं से होते हुए इसकी अनुगूँज हिन्दी में भी सुनाई दी। दलित आत्मकथाएँ भी सर्वप्रथम मराठी भाषा में लिखी

गई और उनके प्रभाव स्वरूप अन्य भारतीय भाषाओं में भी दलित आत्मकथाओं का विकास हुआ। हिन्दी में प्रकाशित दलित आत्मकथाओं की यदि बात की जाए तो उनके नाम इस प्रकार हैं - मोहनदास नैमिशराय की 'अपने-अपने पिंजरे(भाग-1, 1995), (भाग-2, 2000)', ओमप्रकाश वाल्मीकि की 'जूठन'(1997), कौशल्या बैसंत्री की 'दोहरा अभिशाप'(1999), डी. आर. जाटव की 'मेरा सफर मेरी मंजिल'(2000), माता प्रसाद की 'झोपड़ी से राजभवन' (2000), सूरज चौहान की 'तिरस्कृत'(2002), भगवानदास की 'भैं भंगी हूँ' (2007), श्योराज सिंह बेचैन की 'मेरा बचपन मेरे कन्धों पर' (2008), श्रवण कुमार की 'मेरा गुनाह', सुशीला टाककभौरै की 'शिकंजे का दर्द'(2011) आदि प्रमुख हैं। कौशल्या बैसंत्री की आत्मकथा 'दोहरा अभिशाप' को हिन्दी दलित साहित्य की पहली महिला आत्मकथा माना जाता है। आत्मकथा व्यक्ति का वह अंतःसाक्ष्य है जो उसकी संपूर्ण जीवन यात्रा का प्रामाणिक दस्तावेज प्रस्तुत करता है। आत्मकथाकार अपने विगत



जीवन की महत्वपूर्ण घटनाओं को सच्चाई के साथ तटस्थ भाव से अभिव्यक्त करता है। हिन्दी में इस विधा के अतिरिक्त कोई भी ऐसी विधा नहीं है, जो प्रत्येक रूप से मानव के व्यक्तित्व का उद्घाटन करने में समर्थ हो दलित आत्मकथाएँ भी दलितों के यातनामय अतीत व संघर्ष का शिद्ध के साथ अभिव्यक्ति करती है। भारतीय हिन्दू समाज में वर्णव्यवस्था व्याप्त है। यह आज से नहीं पुरातन काल से चली आ रही है। भक्तिकाल में कबीर और रैदास आदि संतों ने दलितों के लिए निर्गुण भक्ति का मार्ग खोलकर वर्णव्यवस्था को चुनौती दी। उनके दोहे 'जात पात पूछे नहीं कोई, हरि को भजे सौं हरि को होई', के माध्यम से अपनी अभिव्यक्ति दी थी। जाति व्यवस्था के आधार पर ही व्यक्तियों के साथ जातिगत भेदभाव किया जाता है। 11वीं शताब्दी में ईसाई मिशनरियों का ध्यान इस ओर आकृष्ट हुआ। इसके बाद महात्मा फुले, गाँधी और डॉ. अम्बेडकर ने इस दिशा में महत्वपूर्ण कार्य किया। गाँधी जी ने अछूतोंद्वारा आंदोलन का सूत्रपात करते हुए कहा कि "अस्पृश्यता हिन्दू धर्म का अंग नहीं है किन्तु उसमें घुसा हुआ एक अनिष्ट है, भ्रम है, पाप है और उसका निवारण करना प्रत्येक हिन्दू का धर्म है, परम कर्तव्य है। यह अस्पृश्यता शीघ्र ही दूर नहीं की जाएगी तो हिन्दू समाज और धर्म की हस्ती भय में है।" 2 आज भी समाज में दलित कही जाने वाली जातियाँ विद्यमान हैं, जिन्हें हम अछूत, अस्पृश्य कहते हैं। जो समाज में निरंतर जातिगत भेदभाव एवं शोषण की शिकार होती हैं। भारतीय समाज आज भी ऊँच-नीच के अनुक्रम पर टिका है। जब भी यह वर्ग समाज में अपनी पहचान खोजने का प्रयास करता है तब उसके हाथ लगती है सिर्फ गुलामी अपमान व तिरस्कार। आज भी सवर्ण

कही जाने वाली जातियों में मनुवाद विभिन्न रूपों में जिंदा है। समाज में दलितों ने अमानवीय जीवन जिया है और उन्हें अनेक प्रकार की यंत्रणाओं का सामना करना पड़ा। दलितों को प्रायः शैक्षिक संस्थाओं, सार्वजनिक स्थलों, धार्मिक स्थलों आदि पर अपमानित किया जाता है। दलित लेखकों द्वारा लिखित आत्मकथाएँ भारतीय समाज में व्याप्त ऊँच-नीच, जातिवाद शोषण व असमानता को प्रामाणिकता के साथ सिद्ध करती हैं। ये रचनाएँ व्यवस्था परिवर्तन की मांग भी करती हैं।

जाति प्रथा की पीड़ा एवं भेदभाव

ओमप्रकाश वाल्मीकि लिखते हैं कि, "भारतीय समाज में 'जाति' एक महत्वपूर्ण घटक है। 'जाति' पैदा होते ही व्यक्ति की नियति तय कर देती है। पैदा होना व्यक्ति के अधिकार में नहीं होता। यदि होता तो मैं भंगी के घर पैदा क्यों होता? जो स्वयं को इस देश की महान सांस्कृतिक धरोहर के तथाकथित अलमबरदार कहते हैं, क्या वे अपनी मर्जी से उन घरों में पैदा हुए हैं? हाँ इसे जस्टीफाई करने के लिए अनेक धर्मशास्त्रों का सहारा वे जरूर लेते हैं।" 3 यह समाज पर लेखक का व्यंग्य ही है। जातिगत पीड़ा से उत्पन्न दर्द को लेखक ने इन शब्दों में अभिव्यक्त किया, "जब तक यह पता नहीं होता कि आप दलित हैं तो सब कुछ ठीक रहता है, जाति मालूम होते ही सब कुछ बदल जाता है। फुसफुसाहटें, दलित होने की पीड़ा चाकू की तरह नस-नस में उतर जाती है। गरीबी, अशिक्षा, छिन्न-भिन्न दारुण जिंदगी, दरवाजे के बाहर खड़े रहने की पीड़ा भला अभिजात्य गुणों से सम्पन्न सवर्ण हिन्दू कैसे जान पाएंगे।" 4

भारतीय समाज में जातिगत भेदभाव इस कदर व्याप्त है कि एक व्यक्ति द्वारा दूसरे को छूने



पर भी वह अपवित्र हो जाता है। जातिगत धरातल पर दलित समाज अत्यंत नीचले पायदान पर और पिछड़ा हुआ है। एक दलित के जीवन में दुःखदायी घटनाओं का क्रम उसके जन्म से प्रारंभ होकर अनवरत चलता रहता है। उस पर जो मार-पीट और उसका जो शोषण होता है। उसे वही समझ सकता है जिसने सहा है।

'तिरस्कृत' आत्मकथा में हम देखते हैं कि स्वयं लेखक अपने बचपन की स्मृतियों को याद करते हुए बताते हैं कि एक दिन सवर्ण (ठाकुर) के बच्चे के साथ खेलते हुए उसे स्पर्श करने पर उनको जो प्रताड़ना दी गई स्वयं लेखक के शब्दों में, "ठाकुर ने मुझे आगे से आकर धर दबोचा। सटाक-सटाक संटियों की बरसात कर दी थी उसने मेरे ऊपर। मेरा कान ऐंठते हुए ठाकुर ने कहा' ?-'साले भंगिया के मेरे छोरा के संग खेलतु है..... ठोर मार दूँगा।' ठाकुर अपने बेटे वीरू को घसीटते हुए कुँए की ओर ले गया।... कुँए से एक बाल्टी पानी खींचा और नीम की टहनी पानी में डुबोकर वीरू को छींटे देने लगा। वीरू रोते-रोते कह रहा था- मौपै पानी क्यों डारि रहे हो? .... अरे! चुप नालायक, भंगिया के संग खेलकर अपने आप कुँ अपवित्र कर लीनो और फिर पूछत है कि पानी के छींटे क्यों डारि रहे हो ? ठाकुर ने वीरू के मुँह पर एक थप्पड़ लगाते हुए कहा था।<sup>5</sup>

इस प्रकार की दूसरी घटना का जिक्र लेखक ने आत्मकथा में किया है। एक दिन शहर से गाँव जाते हुए रास्ते में पैदल का रास्ता था। गर्मी के दिन प्यास लगने पर वे कुँआ देख जमींदार के घर पत्नी सहित पानी पीने पहुँच गए। जमींदार ने दादा का नाम पूछा वह तुरन्त सम्झ गया कि हम कौन-सी बिरादरी से हैं। पानी पिलाते हुए बूढ़ा दाँत पीसता हुआ लेखक की पत्नी से बोला "अरे भंगनियाँ, नेक पीछे कू हट के पानी पी, यह

शहर ना है गाँव है, मारे, लाठिया के कमर तोड़ दई जाएगी। ....भंगिया और चमड़ा के शहर में जाकै नए-नए लत्ता पहर के गाँव में आ जात हैं, कछु पतौ न चलतु कि जे भंगिया के हैं कि नाय(नहीं)।"<sup>6</sup>

माता प्रसाद ने 'झोंपड़ी से राजभवन' आत्मकथा में जातिप्रथा की पीड़ा व जातिगत भेदभाव का जिक्र किया है कि गाँवों में लोग दलितों के साथ अधिक भेदभावपूर्ण व्यवहार करते हैं। एक दलित को भेदभाव के कारण उनके नामों से नहीं बल्कि चमार, चमारी, भंगन आदि नामों से संबोधित किया जाता है। साथ ही उनकी बस्तियों के नाम भी जातियों के आधार पर रखे गए हैं। उनके साथ अछूत व्यवहार होता है, जिसकी पीड़ा अंतर्मन को दर्द की कसक से भर देती है। इसी पीड़ा की अभिव्यक्ति लेखक ने इन शब्दों में की, "ग्रामीण जीवन में अपनी परिस्थिति सबसे भिन्न है और उच्च जाति के लोग उनके साथ घृणा का व्यवहार करते हैं। उनकी बस्तियाँ चमरौटी, चमरवाड़ा, चमरियाना कहीं जाती हैं। चमार का स्पर्श हो जाने पर एक सच्चे हिन्दू के लिए स्नान करना और अपने कपड़े बदलने पड़ते हैं।"<sup>7</sup> इतना ही नहीं अपितु एक हिन्दू नाई भी जातिगत भेदभाव के कारण एक दलित के बाल काटने से साफ इंकार कर देता है, क्योंकि शादी विवाहों में हिन्दुओं के घर उनकी भूमिका रहती है। वे नाराज न हो या उन्हें खुश करने के लिए ही शायद वे ऐसा करते हैं। लेखक ने स्वयं यह सब देखा। "मैं शीतलगंज दिन के बाजार घूमने गया। वहाँ एक हिन्दू नाई की दुकान थी। मैंने नाई से कहा मेरा बाल काट दो। उसने पूछा तुम किस जाति के हो। मैंने अपनी जाति बता दी। उसने कहा चमारों के बाल मेरी दुकान पर नहीं



बनाएँ जाते। .... यह मेरा नया अनुभव था कि चमारों के बाल हिन्दू नाई नहीं बनाते।<sup>8</sup>

दलित समाज के लोगों का जीवन अभावों में ही बीता। आर्थिक अभाव, अज्ञान, अशिक्षा और जाति प्रथा की पीड़ा व जातिगत भेदभाव के कारण यह वर्ग समाज में आज भी निम्नतम जीवन-यापन करने पर विवश है। आज भी समाज में निम्न जातियों को भेदभाव के कारण कोई अपना घर किराये पर भी नहीं देता। उनके साथ अछूत व्यवहार किया जाता है।

'जूठन आत्मकथा में लेखक ओमप्रकाश वाल्मीकि अभावों को सहकर, अच्छा पढ़-लिख नौकरी करने पर भी समाज में जातिगत भेदभाव का सामना करते हैं। किसी ने उन्हें अपना घर किराये पर नहीं दिया। जाति का पता लगते ही मकान मालिक साफ मना कर देते थे। लेखक ने आत्मकथा में लिखा है, "जाति के कारण मुझे किराए का मकान नहीं मिल पा रहा है। जहाँ भी गए वहाँ सबसे पहले जाति पूछी गई। मकान मालिक साफ शब्दों में कहते थे-ना जी, किसी चूहड़े-चमार को हम मकान नहीं देंगे। इस उत्तर पर उल्टे पाँव लौटना पड़ता था। मन में ढेर-सी कुण्ठाएँ लेकर वापस आ जाते थे। तंग आकर मेरे कई मित्रों ने यह भी सुझाव दिया, 'यार! तेरे माथे पर लिखा है कि तू एस.सी. है, मत बता, तुझे देखकर कोई कहेगा कि तू कौन है? लेकिन उनके इस तर्क को मैं मानने के लिए कतई तैयार नहीं था।'<sup>9</sup>

'मुर्दहिया आत्मकथा में हम देखते हैं कि दलित द्वारा कुएँ को छूने भर से ब्राह्मणों की सोच अनुसार पूरा कुआँ अपवित्र हो जाता है। लेखक तुलसीराम ने आत्मकथा में अपने द्वारा भोगी गई जाति प्रथा की पीड़ा की यथार्थ अभिव्यक्ति

इन शब्दों में की-'मैंने कुतूहलवश कुएँ के चबूतरे को एक उँगली से क्षण भर के लिए छू दिया। किन्तु मिसिर बाबा बाल्टी को कुएँ में डुबते हुए नीचे से कनखिया पीछे देख रहे थे और मुझे उँगली चबूतरे से लगाते हुए उन्होंने देख लिया। मेरे द्वारा इस महापाप की क्रिया द्वारा उनका ब्राह्मणत्व इतना आहत हुआ कि उनके हाथ से डोर छूट गई और बाल्टी कुएँ की तलहटी में जा पहुँची। मिसिर शोर मचाते हुए मुंशी जी के पास दौड़े और चिल्लाते रहे कि चमरा ने कुआँ छू लिया। मैं बहुत डर गया था। उस दिन मुंशी जी दिन भर रुक-रुककर गालियाँ देते रहे। इसके बाद मैं भी कभी पानी पिलाने लिए कहने की हिम्मत नहीं जुटा पाया।'<sup>10</sup>

देश को आजाद हुए इतने वर्षों के बाद भी छुआछूत समाज में आज भी विद्यमान है छुआछूत कम हुई ऐसा लोग मानते हैं, किन्तु इस पीड़ा का दंश के जो लोग शिकार हैं वही इस सत्य को जानते हैं। आत्मकथाकार कौशल्या बैसंत्री ने 'दोहरा अभिशाप' में लिखा है कि उनका बचपन अभावों में बीता। माँ चूड़ियाँ बेचने का कार्य करती थी। उनके पास सवर्ण जाति की महिलाएँ भी चूड़ियाँ पहनती थी या माँ उन्हें पहनाने जाती थी। "तब वे पुरानी साड़ी पहनती थी और चूड़ियाँ पहनने के बाद स्नान कर लेती थी। माँ अछूत है यह वे जानती थी। माँ को बुरा लगता था परन्तु पैसे के लिए वह अपमान सह लेती थी। मजबूर थी इसलिए।'<sup>11</sup>

जातिगत भेदभाव का दंश केवल दलित पुरुष ही नहीं अपितु दलित महिला भी झेलती है। इसको 'शिकंजे के दर्द' आत्मकथा में भी देखा जा सकता है। जब गर्मियों के दिनों में सुशीला की नानी काम पर जाती तब सूरज आसमान में ऊपर चढ़ जाता और वह गर्मी से घबराकर छाँह दूढ़ती



फिरती तो सुशीला टाकभौरै लिखती हैं-"नल और कुओं पर वह जा नहीं सकती थी, किसी के भरे बर्तन का पानी अपने हाथों से नहीं ले सकती थी, वह अछूत की सीमा से बँधी थी। इस सीमा को उलांघते ही उस पर सब ओर से आक्रमण होता उसकी इज्जत सरे-आम, सरे बाजार मटियामेट की जाती, जूता चप्पल फेंककर या डंडे लकड़ी से कूंच कर उसे मारा जाता, इस डर से वह प्यासी ही रह जाती थी।"12 गुस्से से नानी कोसते हुए कहती थी, "यह सब तेरी करतूत है भगवान। मुँह पेट बनायो तो बनायो, जात-पाँत क्यों बनाई।"13 विवाह के बाद जब सुशीला नौकरी करने लगी तो वे जिस मोहल्ले में रहती थी वहाँ कोई उनके पास नहीं आता जाता था। पड़ोसिने ऐसे ताने मारती थी, "हम तो राह देख रहे हैं, ये कब यहाँ से जाएँ तो पाप कटे, रात दिन मुँह देखना पड़ता है।"14

इस प्रकार यह स्पष्ट होता है कि समाज में दलित पुरुष हो या स्त्री लगातार इस जातिगत भेदभाव की पीड़ा को सहता है। उसका हर प्रकार से अपमान किया जाता है। उसके वजूद को तिल-तिल कर खंडित किया जाता है।

## संदर्भ ग्रन्थ

- 1 सं. जयप्रकाश कर्दम, नया मानदण्ड, पृष्ठ 71
- 2 डॉ. ओमप्रकाश गुप्त, समस्यामूलक उपन्यासकार, भगवती प्रसाद वाजपेयी, पृष्ठ 110
- 3 ओमप्रकाश वाल्मीकि, जूठन, भाग-1, पृष्ठ 163
- 4 वही, पृष्ठ 164
- 5 सूरज चौहान, तिरस्कृत, पृष्ठ 36
- 6 वही, पृष्ठ 37
- 7 माता प्रसाद, झोपड़ी से राजभवन, पृष्ठ 27
- 8 वही, पृष्ठ 60
- 9 ओमप्रकाश वाल्मीकि, जूठन, भाग-2, पृष्ठ 29
- 10 डॉ. तुलसीराम, मुर्दहिया, पृष्ठ 55
- 11 कौशल्या बैसंत्री, दोहरा अभिशाप, पृष्ठ 64

12 सुशीला टाकभौरै, शिकंजे का दर्द, पृष्ठ 25

13 वही, पृष्ठ 26

14 वही, पृष्ठ 168